ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-6* Issue-1* April-2021
Anthology : The Research

पर्यावरण सामाजिक मुद्दे, समस्याएं एवं संघृत विकास

Environmental Social Issues, Problems and Sustainable Development

Paper Submission: 05/04/2021, Date of Acceptance: 19/04/2021, Date of Publication: 21/04/2021

अमरनाथ
वरिष्ठ प्रवक्ता,
समाजशास्त्र विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
डुमरियागंज, सिद्धार्थनगर,
उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

भौतिक एवं सांस्कृतिक दशाओं का सम्पूर्ण योग जो मानव के चारो ओर व्याप्त होता है, उसे प्रभावित करता है, जिसमें जैव और अजैव का एक दूसरे के साथ अन्योनाश्रय सम्बन्ध होता है, पर्यावरण कहलता है। आदि काल से ही मानव एवं प्रकृति का अटूट सम्बन्ध रहा है, प्राकृतिक परिस्थितिक तंत्र का कोई भी अवयव जिसका उपयोग मानव अपने कल्याण के लिए करता है, प्राकृतिक संसाधन कहलाता है। आधुनिक भौतिकवादी संस्कृति और सभ्यता के विकास ने दुनिया के अनेक देशों की सम्पदा में वृद्धि की है। औद्योगीकरण, नगरीकरण, यंत्रीकरण और प्रगति के साथ–साथ विशालकाय मिल, फैक्ट्री, कारखाने भी स्थापित हुए हैं। कृषि में विज्ञान का प्रवेश हुआ है। आज प्राकृतिक ''संसाधनों की हमारी मांगें बड़ी तेजी से बढ़ती जा रही हैं, संसाधनों का उपयोग अविवेकपूर्ण तरीके से हो रहा है। वनों का आवरण बहुत तेजी से घट रहा है। हम आर्थिक विकास के इन्द्रजाल में फसते जा रहे हैं। पूंजीवादी राष्ट्रों द्वारा भारत सहित तीसरी दुनिया के सभी राष्ट्रों पर अपनी अर्थव्यवस्था को खुला रखने के लिये दबाव डाला जा रहा है, उन्हें ऋण देकर उद्योग की प्रतिस्पर्द्धा में उतार जा रहा है। वर्तमान में मनुष्य की तीसरी आँख– लालच की आँख खुल चुकी है। मनुष्य ने एक ऐसी सभ्यता का विकास कर लिया है जो उसकी सीमित क्षमता तथा बुद्धि से कहीं अधिक बड़ी है। सतत् विकास शब्द का प्रथम बार प्रयोग IUCN द्वारा किया गया। WCED के अुनसार सतत् विकास, वह विकास है जिसके अन्तर्गत भावी पीढ़ियों के लिए आवश्यकताओं की पूर्ति क्षमताओं से समझौता किए बिना वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है। इस संकट की गम्भीरता को सही ढ़ंग से समझना, इसे साधारण घटना मानकर इसकी उपेक्षा न की जाय, यह मनोवृति विकसित किया जाय की इन्द्रियपरक संस्कृति कोई बहुत महत्वपूर्ण वस्तु नहीं है। इसमें बहुत सी दुर्बलताएं विद्यमान हैं, भौतिक संस्कृति सृजनात्मक नहीं है, इसलिए इसे विचारात्मक संस्कृति में बदलना आवश्यक है। इसी से मनुष्य एक नई संस्कृति और नये समाज के नव–निर्माण की ओर बढेगा तथा इसी के माध्यम से मानव जाति इस बड़े संकट से मुक्ति प्राप्त कर सकती है। जिसके लिए जन जागरूकता और जन भागीदारी भी आवश्यक कड़ी होगी।

The entire sum of physical and cultural conditions that surrounds the human being affects the environment, in which bio and inorganic have interdependent relationship with each other, called environment. Human and nature have been inextricably linked since the beginning, any element of the natural ecological system that humans use for their welfare is called natural resource. Science has entered agriculture. Today our demands for natural resources are increasing very fast, resources are being used indiscriminately. The forest cover is decreasing very rapidly. We are getting caught up in the economy of economic development. All the countries of the third world including India are being pressurized by the capitalist nation to keep their economy open, giving loans to them and putting them in the competition of the industry. Man has developed a civilization that is much larger than its limited capacity and growth. The term Sustainable Development was first used by Panbacha. Sustainable development, as per the WCED, is the development under which the needs of the present generation can be met without compromising the fulfillment capabilities of the needs for future generations. To properly understand the seriousness of this crisis, do not ignore it as an ordinary incident, develop the mindset that sensory culture is not a very important thing. There are many weaknesses in this, material culture is not creative, so it is necessary to convert it into an ideological culture. With this, man will move towards the new creation of a new culture and new society and through this mankind can get freedom from this big crisis. For which public awareness and public participation will also be the necessary link.

मुख्य शब्द : भौतिक एवं सांस्कृतिक दशा, जैव एवं अजैव, प्राकृतिक पर्यावरण, परिस्थितिक तन्त्र, यन्त्रीकरण, प्राकृतिक संसाधन, वनोन्मूलन, खेती योग्य भूमि, औद्योगीकरण, शहरीकरण, औद्योगिक इन्द्रजाल, वैश्वीकरण, बाजारवाद, उपभोक्तावाद, नवउपनिवेसवाद, मृदा अपरदन, लालच की तीसरी आँख, मनुष्य और प्राकृतिक संवेदनशीलता, आरामदायक, विलासिता, डी0डी0टी0 कीटनाशक, मरूभूमिकरण, जलमण्डल, थलमण्डल, वायुमण्डल, सतत विकास, आई0यू0सी0 एन0, डब्ल्यू0 सी0ई0डी0, मानवता के साथ विज्ञान, इन्द्रिपरक संस्कृति, संकटमुक्ति, अग्निस्नान, नवनिर्माण, जनजागरूकता एवं जनभागीदारी।

Physical and Natural Conditions, Bio And Abiotic, Natural Environment, Ecological System, Mechanization, Natural Resources, Deforestation, Cultivable Land, Industrialization, Urbanization, Industrialization, Globalization, Marketism, Consumerism, Neo-Colonialism, Soil Erosion,, DDT Insecticides, Desertification, Wetlands , Thalamandal, Atmosphere, Sat Vikas, I.U.C.N., W.C.E.D.

प्रस्तावना

भौतिक एवं सांस्कृतिक दशाओं का सम्पूर्ण योग जो मानव के चारो ओर व्याप्त होता है, इसे प्रभावित करता है, जिसमें जैव और अजैव का एक दूसरे के साथ अन्योनाश्रय सम्बन्ध होता है, पर्यावरण कहलता है। ''पृथ्वी का धरातल उसकी सब प्रकार के पौधें जलवायु और विश्व की वे सभी शक्तियाँ जो पृथ्वी और मानव को प्रभावित करती हैं, प्राकृतिक पर्यावरण के अन्तर्गत आते हैं।''[1]

आदि काल से ही मानव एवं प्रकृति का अटूट सम्बन्ध रहा है, प्राकृतिक परिस्थिक तंत्र का कोई भी अवयव जिसका उपयोग मानव अपने कल्याण के लिए करता है, प्राकृतिक संसाधन कहलाता है। आधुनिक भौतिकवादी संस्कृति और सभ्यता के विकास ने दुनिया के अनेक देशों की सम्पदा में वृद्धि की है। औद्योगीकरण, नगरीकरण, यंत्रीकरण और प्रगति के साथ–साथ विशालकाय मिल, फैक्ट्री, कारखाने भी स्थापित हुए हैं। कृषि में विज्ञान का प्रवेश हुआ वैज्ञानिक ढ़ग से खेती कार्य में वृद्धि हुई। इन सब ने मिलकर प्राकृतिक पर्यावरण को नष्ट–भ्रष्ट कर दिया, प्राकृतिक सन्तुलन जो बना और गठा था, वह टूटने लगा क्योंकि प्रदूषण एक अनिच्छित परिवर्तन है जो भौतिक रासायनिक क्रियाओं से वायु, मिट्टी और जल से उत्पन्न होकर मानव, जीवन, के लिए घातक बनता है। इस पर्यावरणीय प्रदूषण से मानव जीवन कष्टप्रद बन जाता है।

हमारे लिए अत्यन्त आवश्यक है कि हम इन समस्त प्राकृतिक खजाने का बुद्धिमत्तापूर्ण एवं विवेकशील ढंग से उपयोग करें। प्राकृतिक ''संसाधनों की हमारी माँगें बड़ी तेजी से बढ़ती जा रही हैं, संसाधनों का उपयोग अविवेकपूर्ण तरीके से हो रहा है। ऐसा अंशतः इसलिए है क्योंकि हमारी जनसंख्या में अत्यन्त वृद्धि हो रही है, और अंशतः इसलिए भी कि हम ठीक से समझ नहीं पा रहे हैं, कि संसाधन सीमित है और एक दिन समाप्त हो जायेगा।''[2]

वर्तमान में वनों का आवरण बहुत तेजी से घट रहा है, विशेषकर उन विकासशील देशों में जो उष्णकटिबन्धीय क्षेत्र में स्थित हैं, वनोन्मूलन के केन्द्र में खेती योग्य भूमि का विस्तार, शहरीकरण, औद्योगीकरण, काष्ठीय पादपों का अत्यधिक व्यवसायिक उपयोग ईधन, लकड़ी अन्य वन उत्पाद, तथा पशुओं द्वारा घास चरना। यदि इसी तरह से वनोन्मूलन होता रहा तो यह सम्भावना है कि उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों से बचा हुआ वन अगली शताब्दी तक समाप्त हो जायेगा। वनोन्मूलन से मृदा अपरदन बढ़ता है और भूमि की उर्वराशक्ति घटती है। सूखे क्षेत्रों में वनोन्मूलन के परिणाम स्वरूप मरूस्थल का निर्माण हो सकता है। पृथ्वी तथा उसके निवासियों का भविष्य हमारी क्षमताओं से सम्बद्ध पर्यावरणीय अनुरक्षण तथा परिरक्षण पर निर्भर करता है इसी सन्दर्भ में पर्यावरण के दीर्घावधिक उपयोग एवं अभिवृद्धि के लिए सतत् विकास की संकल्पना का विकास हुआ है। पोषणीयता सभी प्राकृतिक पर्यावरण तन्त्रों का एक अंतर्निमित लक्षण है जो मानवीय हस्तक्षेप को न्यूनतम स्तर पर स्वीकार करता है।

''आज के भौतिकवादी युग में हम एक प्रकार के आर्थिक विकास के इन्द्रजाल में फसे हुए हैं । इसने हमारे पर्यावरण को काफी प्रभावित किया है। पिछले कुछ वर्षों में पूंजीवादी राष्ट्रों द्वारा भारत सहित सभी तीसरी दुनिया के राष्ट्रों पर अपनी अर्थ व्यवस्था को खुला रखने के लिये दबाव डाला जा रहा है, कहा जा रहा है कि अर्थ व्यवस्था को खुला रखने से इन राष्ट्रों में विदेशी पूंजी का विनियोग होगा पुंजीवादी राष्ट्रों द्वारा अपने इस तर्क की पुष्टि के लिए कोरिया, ताइवान, मलेशिया, सिंगापुर आदि पूर्व एशियाई देशों का उदाहरण दिया जाता है ।''[3]

यह पूंजीवादी देशों की बहुत बड़ी चाल है कि देश को आर्थिक फलक पर, आज दुनिया में उन्नति करना आवश्यक हैं। यह उदारीकरण, वैश्वीकरण, बाजारवाद और उपभोक्तावाद, नवउपनिवेशवादी पूंजीवादी देशों के गर्भ से निकला हैं । पश्चिम के देश अविकसित और विकासशील देशों को ऋण देकर उद्योग की प्रतिस्पर्द्धा में उतार रहे हैं। इससे चन्द पूंजीपतियों के व्यापार में वृद्धि हुई पर उससे गई गुना ज्यादा प्राकृतिक पर्यावरण को हानि उठानी पड़ रही है। यह प्रदूषण जीने योग्य समाज का निर्माण नहीं कर रहा है, बल्कि पश्चिम की भोजन की जरूरतें पूरी करने के कारण बाकी दुनिया में तबाही मची हुई है। आँकड़ें बताते हैं कि उपनिवेशवाद खत्म होने के दौर में बाकी दुनिया की जितनी जमीन का उपयोग पश्चिमी देशों के खाने और अन्य जरूरतों को पूरा करने में हो रहा है, वह 1940 में उपनिवेश के रूप में मौजूद जमीन से कई गुना अधिक है ।

''संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम ने हाल में एक रिर्पोट जारी की है जिसमें भारत सहित कई देशों पर कर्ज के बोझ और इस कर्ज पर पश्चिमी देशों द्वारा वसूल किए

जाने वाले मोटे सूद का जिक्र है। यह सूद पर्यावरण के कीमत पर वसूला जा रहा है। कर्ज के बोझ और विदेश व्यापार की उल्टी– सीधी शर्तों के चक्कर में ये देश अपनी प्राकृतिक सम्पदा पर काफी दबाव डालते हैं, और उसका जरूरत से ज्यादा दोहन करते है।''[4]

दुनिया के देश पश्चिम की औद्योगिक नीतियों और बाजारवाद के जाल में फसते जा रहे हैं। हम प्राकृतिक साधनों का दोहन अपने स्वार्थों के अनुसार बड़ी मात्रा में कर रहे हैं। मनुष्य समाज और देश के धन, पर्यावरण का प्रयोग अपने हित के लिए करने लगा है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक तो सब कुछ ठीक–ठाक चल रहा था, क्योंकि तब तक मनुष्य की तीसरी आँख– लालच की आँख नहीं खुली थी। तब तक प्रकृति की सौन्दर्य को उसने ललचाई आँखों से नहीं देखा था। आज विनाश की पटकथा जो लिखी जा रही है। इनके पीछे लालच की, लूट–खसोट की और लिप्सा की यही दृष्टि उत्तरदायी है। ''महात्मा गॉधी जी ने कहा है कि सभी की जरूरतों को पूरा करने के लिए प्रकृति के पास पर्याप्त संसाधन है लेकिन किसी एक के भी लालच को पूरा करने के लिए कम है।''[5] उन्होंने इन शब्दों से मानव जाति के पूरे भविष्य को रेखांकित कर दिया है। इसमें मनुष्य प्रकृति के रिश्ते की संवेदनशीलता और पारस्परिकता का पता चलता है और इसमें प्राकृतिक संसाधनों के दोहन को तुरन्त रोकने की चेतावनी दी है। जब भारतीय दर्शन में अपरिग्रह का विकास हुआ, यह एक चेतावनी और मूल्य दोनों था।

पर्यावरण पर मानव क्रिया–कलापों के विपरीत प्रभाव को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दो स्तरों पर देखा जाता है।

प्रत्यक्ष प्रभाव

आधुनिक औद्योगिक काल का मनुष्य अपनी आवश्यक आवश्यकताओं, आराम दायक आवश्यकताओं व विलासी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पर्यावरण का दोहन इस प्रकार करता है कि उसका प्रत्यक्ष प्रभाव शीघ्र ही दिखायी पड़ने लगता है। ऐसे दोहन की योजना बनाते समय वह जानता है कि पर्यावरण पर उसका विपरीत प्रभाव पड़ेगा परन्तु वह त्वरित लाभ के लिए दूरगामी हानि की प्रवाह नहीं करता।

अप्रत्यक्ष प्रभाव

आज के अर्थ प्रधान युग में अधिकांश व्यक्ति तीव्र गति से अधिक से अधिक अर्जित करना चाहता है। चाहे वह उद्योग के माध्यम से हो या कृषि के माध्यम से इस औद्योगिक युग में मनुष्यों की निगाहें तत्कालीन लाभ की तरफ होती हैं, इसके लिए अनेक उपाय करते हैं और इन उपायों के दूरगामी प्रभावों के विषय में नही सोचते, आर्थिक लाभ हेतु किए गये क्रिया–कलापों के कारण पर्यावरण पर पड़ने वाला अप्रत्यक्ष विपरीत प्रभाव तुरन्त परिलक्षित नहीं होता, क्योंकि इसका प्रभाव बहुत मन्दगति से होता है। जैसे डी0डी0टी0 कीटनाशक का प्रयोग कीटों से फसलों मे चला जाता है। उस फसल का अनाज जब किसी महिला द्वारा खाया जाता है तो डी0डी0टी0 उसके रक्त में पहुंच जाता है फिर यदि वह गर्भिणी है तो यह डी0डी0टी0 इसके गर्भस्थ के रक्त में चला जाता है जिसके परिणाम स्वरूप इसका शिशु जब जन्म लेता है तो किसी बीमारी या अपंगता से ग्रस्त रहता है, डी0डी0टी0 से प्रभावित फसल का चारा भूसा किसी गाय या भैंस ने खाया तो उसके रक्त में पहुंच गया फिर उसके रक्त से उसके दूध में पहुंच गया, फिर उसके दूध को जिसने पिया उसके रक्त में पहुंच कर संचय होता रहा और इस प्रकार मानवीय क्रिया–कलापों के परिणामस्वरूप पर्यावरण पर पड़ने वाले अप्रत्यक्ष परिणाम दूरगामी होता है। फिर बाद में अपना संचयी प्रभाव किसी बीमारी या अपंगता के रूप में प्रकट करता है। यह कई मांर्गो से गमन करते हैं। इस प्रकार ''आधुनिक औद्योगिक समाज के मानव के ऐसे बहुत से क्रिया कलाप हैं जो पर्यावरण पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विपरीत प्रभाव डालते हैं जो कि पर्यावरण व परिस्थितिकी तन्त्र में भयावह प्रदूषण लाते हैं।''[6]

एक सामान्य सा भ्रम रहा है कि औद्योगीकरण के आने से पूर्व पर्यावरण की हानि नहीं हुई थी। वास्तव मे आरम्भिक काल से ही मानव क्रिया कलापों से पर्यावरण में परिवर्तन आते रहे हैं।

सबसे अधिक वनोन्मूलन ग्रीक और रोमन युगों में हुआ था, जब वहाँ के लोगों द्वारा जलपोत निर्माण तथा दैनिक जीवन ईंधन के रूप में इस्तेमाल करने के लिए अंधा–धुन्ध वृक्षों की कटाई और साथ ही खनन से सम्बन्धित क्रिया–कलापों के परिणामस्वरूप मरूभूमिकरण हुआ। चूँकि उस समय मानव जनसंख्या थोड़ी थी इसलिए परितन्त्र मानव हस्तक्षेप का निर्वाह करता रहा। मगर बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ लोगों की आवश्यकताएं बढ़ी और उसी तरह उसकी क्रिया–कलापों का संप्रभाव भी बढ़ता गया।

कृषि, औद्योगीकरण तथा खनन तकनीकों में विकास से उत्पादन में और उपभोग में भी एक दिशा परिवर्तन हुआ जो गैर–निम्नीकरण उत्पादों (जैसे प्लास्टिक) तथा अनवीकरणीय संसाधनों जैसे कि पेट्रोलियम उत्पादों के अधिकाधिक उपयोग की ओर था। मगर पिछले कुछ दशकों में मानव क्रियाकलापों का हानिकारक संप्रभाव बढ़ गया है, तथा सभी प्रमुख मण्डलों–जलमण्डल, वायुमण्डल, तथा थलमण्डल, सभी में अधिक स्पष्ट नजर आने लगा है। सतत् बढ़ती जनसंख्या, अनियंत्रित एवं अत्याधिक उपभोग, नगरीकरण तथा औद्योगिक प्रसार जिनके साथ ऊर्जा की माँग भी बढ़ती गयी, ऐसे परिवर्तन आ गए जो पर्यावरण के लिए गम्भीर चिन्ताएं बनते जा रहे हैं।

''मनुष्य ने एक ऐसी सभ्यता का विकास कर लिया है जो उसकी सीमित क्षमता तथा बुद्धि से कहीं अधिक बड़ी है। इसे उसकी सीमित नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति न तो उसे सही उपयोग में ला सकती है और न ही व्यवस्थित कर सकती है। यह (सभ्यता) उसके अहंकार और वासनाओं का खतरनाक साधन है।''[7]

अध्ययन के उद्देश्य

सतत् विकास टिकाऊ या शाश्वत विकास का तात्पर्य विकास के उस अनुकूलतम स्तर से है जो पर्यावरण को क्षति पहुंचाए बिना संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग से प्राप्त होता है। इसके पश्चात् पूंजी, कुशल श्रमिक, तकनीक आदि के प्रयोग के बावजूद यदि अधिकतम विकास का प्रयास किया जाये तो पर्यावरण को

स्थायी रूप से क्षति पहुंचाने लगती है। सतत् विकास शब्द का प्रथम बार प्रयोग IUCN द्वारा किया गया। 1987 ई0 में WCED (World commission on Environment and Development) द्वारा सतत् विकास शब्द की परिभाषा और कार्य पद्यति की व्याख्या की गयी। इसके अनुसार टिकाऊ विकास (Sustainable Develoment) वह विकास है जिसके अन्तर्गत भावी पीढियों के लिए आवश्यकताओं की पूर्ति क्षमताओं से समझौता किए बिना वर्तमान पीढी की आवश्यकताओं को पूरा किया जाता है। अतः पर्यावरण की सुरक्षा के बिना विकास को निर्वहनीय नहीं बनाया जा सकता। आर्थिक विकास और पर्यावरण सुरक्षा के मध्य एक वांच्छित संतुलन बनाये रखना ही निर्वहनीय या टिकाऊ विकास है। वर्तमान में यह विकास का भूमण्डलीय दृष्टिकोण बन गया है। पर्यावरण को क्षति पहुचाए बगैर विकास के नये रास्ते और साधन खोजने होंगे जिससे मानव समाज समृद्ध एवं खुशहाल बन सके। ''महात्मा गॉधी जी ने यंग इण्डिया 1925 में सात पापों का उल्लेख किया है जिसमे एक मानवता के बिना विज्ञान है।''[8]

आज परिस्थितियों ने मानव को ऐसे मुकाम पर खड़ा कर दिया है कि मानवता के साथ विज्ञान को अपनाना मानव की विवशता बन गई है। क्योंकि पर्यावरण सिकुड़ रहा है। जिससे मानव जीवन भी सिमटता चला जा रहा है। समय रहते यदि इस संकट से नहीं निपटा गया तो यह मानवता और मनुष्य दोनों को समाप्त कर देगा।

निष्कर्ष

''इस संकट की गम्भीरता को सही ढ़ंग से समझना, इसे साधारण घटना मानकर इसकी उपेक्षा न की जाये, यह मनोवृति विकसित किया जाये कि इन्द्रियपरक संस्कृति कोई बहुत महत्वपूर्ण वस्तु नहीं है। इसमें बहुत सी दुर्बलताएं विद्यमान हैं, यह बोध करना कि इन्द्रियपरक (भौतिक) संस्कृति सृजनात्मक नहीं है, इसलिए इसे विचारात्मक संस्कृति में बदलना आवश्यक है। एक ऐसा मनोबल विकसित करना जिसकी सहायता से वर्तमान इन्द्रियपरक संस्कृति की पुनर्परीक्षण करके इसके जीर्ण–शीर्ण तत्वों के स्थान पर रचनात्मक नैतिक तत्वों को प्रधानता दी जा सके।''[9]

एक सूत्र के रूप में इन सुझावों को स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि संकट → अग्नि स्नान → कष्ट और निर्वचन → नवनिर्माण = संकट मुक्ति, तात्पर्य है कि जब इतना बड़ा संकट विश्व के सामने आ गया है तो उससे बचने के लिए हमें कठिन परीक्षा से गुजरना होगा।

यह कठिन परीक्षा (अग्नि स्नान) मनोवृत्तियों में परिवर्तन तथा भौतिक सुखों के त्याग के रूप में होगी। इससे आरम्भ में सभी को कष्ट होगा लेकिन उसके परिणामस्वरूप मानवीय व्यवहारों तथा नैतिक मूल्यों का नये सिरे से निर्वचन होगा। इसी से मनुष्य एक नई संस्कृति और नये समाज के नव–निर्माण की ओर बढ़ेगा तथा इसी के माध्यम से मानव जाति इस बड़े संकट से मुक्ति प्राप्त कर सकती है। जिसके लिए जनजागरूकता और जन भागीदारी भी आवश्यक कड़ी होगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *मैकाइवर एण्ड पेज– सोसाइटी पृष्ठ– 98.*
2. *राजेश्वरी प्रसाद चन्देला, पर्यावरण आज का भारतीय परिदृश्य पृष्ठ –38.*
3. *पर्यावरण अध्ययन : रचना श्रीवास्तवा संयोजक राइटर्स एवं जनरलिस्ट एसोशिएशन उत्तर भारत पृष्ठ– 48*
4. *सम्पादक अनिल अग्रवाल, हमारा पर्यावरण पृष्ठ – 254– 255.*
5. *हरिशचन्द्र व्यास, पर्यावरण शिक्षा पृष्ठ – 5.*
6. *Aurobin, The Life Divine Vol IP- 633*
7. *योजना विशेषांक वर्ष 60 अंक 1 जनवरी 2016*
8. *यंग इण्डिया, 22 अक्टूबर 1925*
9. *Pitrim Sorkin The Crisis of our Age. P. 79*